

७७. जैन शिलालेख संग्रह / माणिकचन्द्र / भाग २ / देवरहिल्लि-लेख क्र.१२१।
 ७८. देविष्य, भावती-आराधना-विजयोदयाटीका-प्रशस्ति।

एष सुसुप्रसूतमण्डितं धोदधादिकममलं।
 पणामाणि बहुमाणि तित्थं धम्मस्स कत्तारं॥ १/१॥ प्र.सा.।
 सेसे पुण तित्थये ससव्वसिद्धे विमुद्धसञ्जाते।
 सप्तो य णाणदंसा-चरित्तव-वीरियायारे॥ १/२॥'' प्र.सा.।

''कवचित्तीर्थकन्वपि वीरस्वामिनः एव प्रथमं नमस्क्रिया—

पञ्चास्तिकाय की निम्नलिखित गाथाएँ अधोलिखित प्रस्तावना-वाक्यों के साथ उद्धृत की गयी हैं—
 'सिद्धे जयपुसिद्धे' इस मंगलगाथा (क्र.१) की टीका में प्रवचनसार एवं

यथा—
 आठवीं शती ई० के पूर्वार्ध में हुए अपराजित सूरि ने 'भावती-आराधना' की विजयोदया-टीका में आचार्य कुन्दकुन्द-रचित प्रवचनसार, समयसार, पञ्चास्तिकाय और बारस-अणुवेकख से कई गाथाएँ 'उक्तं च' आदि प्रस्तावना के साथ उद्धृत की हैं।

१.२. विजयोदया में कुन्दकुन्द की गाथाओं के उदाहरण

महाप्रकृत्याचार्य के प्रशिष्य और बलदेवसूरि के शिष्य थे।^{७८}
 आचार्य' नाम के चतुर्दश अध्याय में द्रष्टव्य हैं। अतः वे किसी दिवाकर चन्द्रनन्दी-के नहीं थे, अपितु वे पक्के दिवाकर थे, इसके प्रमाण, 'अपराजितसूरि : दिवाकर तिस्रु, यह अनुमान समीचीन नहीं है, क्योंकि अपराजित सूरि यापनीयसम्प्रदाय

हि.सं./पृ.७९)।

दिये जाने का उल्लेख है। अपराजित शायद इन्हीं चन्द्रनन्दी के प्रशिष्य होंगे।'' (जे.सा.इ./
 चन्द्रनन्दी, कर्तिनन्दी और विमलचन्द्र की 'लोकतिलक' जैनमन्दिर के लिए एक गाँव
 १० सं० ६९८ (वि० सं० ८३३ = ७७६ ई०)^{७९} का मिला है। उसमें यापनीयसंघ के
 प्रेमी जी ने लिखा है कि "गावंधा के पृथ्वीकोर्ण महाराज का एक दानपत्र

का लेखन नौवीं शती ई० के पूर्व अर्धार्थ आठवीं शताब्दी में हुआ है।
 है, न किसी ग्रन्थ का नामोल्लेख है। अतः यही अनुमानित होता है कि विजयोदयाटीका
 में सातवीं शती ई० के बाद के किसी भी ग्रन्थ से न तो कोई उद्धरण दिया गया
 विजयोदयाटीका इसके पश्चात् ही रची गई है। यह उसकी पूर्ववर्धिय है। विजयोदया
 जिसका रचनाकाल सातवीं शताब्दी ई० है। शृंगारशतक भी इसी समय का है। अतः

७७. जैन शिलालेख संग्रह / माणिकचन्द्र / भाग २ / देवरहेल्लि-लेख क्र.१२१।
 ७८. देविष्य, भावती-आराधना-विजयोदयाटीका-प्रशस्ति।

एष सुसुप्तमणुसिंदवदिदं शोदधादिकममलं।
 पणामाणि बहुमाणि तित्थं धम्मस्स कत्तारं॥ १/१॥ प्र.सा.।
 सेसे पुण तित्थये ससव्वसिद्धे विमुद्धसञ्जाते।
 सप्तो य णाणदंसण-चरित्तव-वीरियायारे॥ १/२॥'' प्र.सा.।

''कवचित्तीर्थकर्त्तव्ये वीरस्वामिनः एव प्रथमं नमस्क्रिया—

की गयी है—

पञ्चास्तिकाय की निम्नलिखित गाथाएँ अधोलिखित प्रस्तावना-वाक्यों के साथ उद्धृत
 'सिद्धे जयपुसिद्धे' इस मंगलगाथा (क्र.१) की टीका में प्रवचनसार एवं

यथा—

आठवीं शती ई० के पूर्वार्ध में हुए अपराजित सूरि ने 'भावती-आराधना' की
 विजयोदया-टीका में आचार्य कुन्दकुन्द-रचित प्रवचनसार, समयसार, पञ्चास्तिकाय और
 बारस-अणुवेकख से कई गाथाएँ 'उक्तं च' आदि प्रस्तावना के साथ उद्धृत की है।

१.२. विजयोदया में कुन्दकुन्द की गाथाओं के उदाहरण

महाप्रकृत्याचार्य के प्रशिष्य और बलदेवसूरि के शिष्य थे।^{७८}
 आचार्य' नाम के चतुर्दश अध्याय में द्रष्टव्य है। अतः वे किसी दिवाकर चन्द्रनन्दी-
 के नहीं थे, अपितु वे पक्के दिवाकर थे, इसके प्रमाण, 'अपराजितसूरि : दिवाकर
 किन्तु, यह अनुमान समीचीन नहीं है, क्योंकि अपराजित सूरि यापनीयसम्प्रदाय

हि.सं./पृ.७९)।

दिये जाने का उल्लेख है। अपराजित शायद इन्हीं चन्द्रनन्दी के प्रशिष्य होंगे।'' (जे.सा.इ./
 चन्द्रनन्दी, कर्तिनन्दी और विमलचन्द्र की 'लोकतिलक' जैनमन्दिर के लिए एक गाँव
 श० सं० ६९८ (वि० सं० ८३३=७७६ ई०)^{७९} का मिला है। उसमें यापनीयसंघ के
 प्रेमी जी ने लिखा है कि "गावंधा के पृथ्वीकोर्झिल महाराज का एक दानपत्र

का लेखन नौवीं शती ई० के पूर्व अर्धार्थ आठवीं शताब्दी में हुआ है।
 है, न किसी ग्रन्थ का नामोल्लेख है। अतः यही अनुमानित होता है कि विजयोदयाटीका
 में सातवीं शती ई० के बाद के किसी भी ग्रन्थ से न तो कोई उद्धरण दिया गया
 विजयोदयाटीका इसके पश्चात् ही रची गई है। यह उसकी पूर्ववर्धिय है। विजयोदया
 जिसका रचनाकाल सातवीं शताब्दी ई० है। शृंगारशतक भी इसी समय का है। अतः

की गयी है—

के समर्थन हेतु **बारस-अणुवेकला** की निम्नलिखित गाथा, उक्त 'ब' कहकर उद्धृत
 'जय पा जादे पा मदे' (म.आ.१७७०) इस गाथा में वर्णित क्षेत्रपरिवर्तन

इति वचनात्।

मिच्छतसिदेण तु भवहिती भजिता बहुसो ॥ २८ ॥
 तिरथादिजहणुणादिषु जाव तु उवरिल्लया तु गेज्जा।

प्रमाणरूपता प्रदर्शित की गयी है—

की गाथा से किया गया है और गायान्त में 'इति वचनात्' के उल्लेख द्वारा उसकी
 'एगालिगतिगवठ' (म.आ.१७६७) गाथा के कथन का समर्थन **बारस-अणुवेकला**

एसो बंधसमासो जीवाणं मिच्छयणत्तस ॥ २६२ ॥
 अन्धवसिदेण बंधो सत्तो तु मरेज पा मरिजेत्थ।

सूरि ने समवसर की इस गाथा के द्वारा की है—

'दिसादे अवरिणण' (म.आ.८००) गाथा के अभिप्राय की पुष्टि अपर्याजित

स्थानथा व 'अरसमज्जवमाथं अज्जत्तं वेदणगुणमसदं' इत्यनेन विशेषः।'
 "तदेदं परीक्ष्यते, विषयकारपरिणामिभनो यदि स्यादुपरसमानस्वप्रशिक्षात्मकता

साथ समवसर की ४९वीं गाथा का पूर्वार्ध प्रमाणरूप में उद्धृत किया गया है—
 'दंसणामाराहेतेण' (म.आ.४) की टीका में निम्नलिखित प्रस्तावना-वाक्य के

इति वचनात् ---।

रहितं तु उगाहादिहं सुहेति एतद्विषं भणियं ॥ १/५१ ॥
 जादं सबं समत्तं पाणामांतस्थविथिदं विमलं।

प्रमाणरूपता का प्रदर्शन किया गया है—

की अधोलिखित गाथा प्रस्तुत की गयी है और अन्त में 'इति वचनात्' उक्ति से उसकी
 'पाणोण सज्जभावा' (म.आ.१००) गाथा के भाव की पुष्टि के लिए **प्रवचनसार**

मोहकखोहविहीणो परिणामो अप्पो हुं समो ॥ १/७ ॥
 चारिंतं खलु धम्मो धम्मो जो सो समो ति णिहिंसे।

के साथ **प्रवचनसार** की निम्न गाथा का उल्लेख किया गया है—

'पाणस्स दंसणस्स' (म.आ.११) गाथा की टीका में 'तथा चोक्तं' इस निर्देश

इदमदवदिदाणं तिहुअणुहिदमधुरविसदवकणामिति ॥ १ ॥" प.का.।

—'वविदेकप्रवर्द्धन—

७९. शाकल्यदर्शनस्य सत्यं दिशं पञ्चोत्तरैश्चराम् ।
 शास्त्रैः शान्तार्थं जिनस्य रचितं वक्ष्यामि हरिप्रशुभम् ॥ ६६ / ५२-५३ ॥ हरिप्रशुभम् ।
 ८०. क-ध्वलाटीका/षष्ठोऽङ्कः/पु.१६/ध्वलाटीका-प्रश्नः/पृ.५१२।
 ख-जैन-शास्त्रप्रसंगे जैन : भारतीय इतिहास एक दृष्टि / पृ. २२१-२२२।

वीरसेन स्वामी ने षष्ठोऽङ्कः नाम की ध्वला टीका एवं कससायपण्डित की जयध्वला
 १०.२. ध्वला में प्रमाणस्वरूप कुन्दकुन्द की गाथाएँ एवं ग्रन्थनाम
 पूर्ण की थी। ८०।
 वीरसेन स्वामी इनसे पूर्ववर्ती या इनके समकालीन थे। उन्होंने सन ७८० ई० में ध्वलाटीका
 है। इन्होंने अपना समय शक सं० ७०५ अर्थात् ई० सन ७८३ बताया है। ७९ अतः
 शिष्य आदिपुराणकार जिनसेन (प्रथम) की स्मृति हरिप्रशुभम् (१/३९-४०) में की
 हरिप्रशुभम्कार जिनसेन (द्वितीय) ने ध्वलाकार वीरसेन स्वामी और उनके
 १०.१. ध्वला का रचनाकाल ७८० ई०

८वीं श. ई. की ध्वला, जयध्वला में कुन्दकुन्द की गाथाएँ

वे अपराजित सूरि से बहुत प्रार्थन थी।
 वे उक्त वर्णों की आगमप्रमाण के रूप में उद्धृत किये जाने से सिद्ध होता है कि
 इस प्रकार आठवीं शताब्दी ई० के पूर्वार्ध में हुए अपराजित सूरि के द्वारा कुन्दकुन्द

इति वचनात् ।
 ततो विसयमाहृणं ततो रगो व दोसो वा ॥ १२१ ॥
 गदिमधिगतस्स देहो देहदो इदियाणि जायते ।

'इति वचनात्' कहकर उसका प्रमाण्य दर्शाया है—
 करने के लिए अपराजित सूरि ने पंचास्तिकाय का निम्न वचन उद्धृत किया है और
 'संश्लेष कुन्दो' (म. आ. १.०३) गाथा में वर्णित मनोवैज्ञानिक सत्य की प्रमाणित
 जादी मदी य बहुसो भमोण हु कालसंसारि ॥ २७ ॥
 उवसिपिण्डावससिपिण्डिसमयावलिगामु विरवसेसामु ।

ही निम्नलिखित गाथा से 'उक्तं च' निर्देशपूर्वक की गयी है—
 'तत्कालतदाकाल' (म. आ. १.७७१) के भाव की पुष्टि बाम-अणुवेकखा की
 आगाहणा य बहुसो परिभामदो विजसंसारि ॥ २६ ॥
 सव्वामि लोगाखिते कमसो न पण्णि जणा उयणा ।

- १०. धवलटीका/धरुण्डणम/पृ.३/१,२,४/पृ.२ (धरुण्डणम-परिशोत्तन/पृ.०३५)
- ११. धवलटीका/धरुण्डणम/पृ.७/३,४,९/पृ.२३३ (धरुण्डणम-परिशोत्तन/पृ.३५)
- १२. धवलटीका/धरुण्डणम/पृ.३३/५,५,५/पृ.२२२ (धरुण्डणम-परिशोत्तन/पृ.३५)

१२. "जीवस्थान-वैलिका के अन्तगत प्रथम, प्रकृति समुत्कीर्तन' वैलिका में दर्शनावरणीय के प्रसंग में जीव के ज्ञान-दर्शन लक्षण को प्रकट करते हुए धवलकाम

११. "प्रकृति अनुयोगादिर में श्रुतज्ञान के पर्याय-शब्दों का स्पष्टीकरण करते हुए धवला में प्रवचनसार की 'जं अण्णाणी कम्म' आदि गाथा (३/३८) उद्धृत की गयी है।" ११

आगमवक्खुं साहू इंदियवक्खुं सिद्धा पूण सव्वदा वक्खुं ॥ ३/३४ ॥ ११

१०. "यह गाथा कुछ पाठभेद के साथ प्रवचनसार में इस प्रकार उपलब्ध होती है—

आगमवक्खुं साहू इंदियवक्खुं असंसज्जा जं
 देवा य ओहिवक्खुं केवलवक्खुं जिणा सव्व ॥

ऐसा निर्देश कर इस गाथा को उद्धृत किया है—
 और तत्पश्चात् उदय व्युत्थित होला है, यह स्पष्ट करते हुए 'एतुवुत्तज्जांती गाथा' किया गया है। इस प्रसंग में धवलकाम ने उन सोलह प्रकृतियों का पूर्व में बन्ध लक्ष्य करके पाँच ज्ञानावरणीय आदि सोलह प्रकृतियों के बन्धक-अबन्धकों का विचार १०. "आगे बन्धव्याप्तित्वविषय में वेदमार्गा के प्रसंग में अपागतोवेदियों को

"यह गाथा प्रवचनसार (२/८०) तथा पञ्चास्तिकाय (१२७) में भी है।" १०

अरसमरुवमंथं अन्नं अन्नं वेदणानुणमसहं।
 जण अतिगगहणं जीवमणिहिंसजणं ॥ ४१ ॥

की है—
 प्रमाण के रूप में वहाँ 'वृत्तं च' कहकर समयसार की निम्नलिखित गाथा उद्धृत आकार से रहित है, उसे जीव जानना चाहिए। यह जीव का साधारण लक्षण है। स्वर्ण से रहित, सूक्ष्म, अमूर्तिक, गुरुता व लघुता से रहित, असंख्यात-प्रदेशावाला और करते हुए यह कहा है कि जो पाँच वर्ण, पाँच रस, दो गन्ध व आठ प्रकार के अजीव के स्वरूप को स्पष्ट किया गया है। वहाँ जीव के साधारण लक्षण का निर्देश १. "जीवस्थान-द्वयप्रमाणानुगम में द्रव्यभेदों का निर्देश करते हुए धवला में जीव-

समादिशति ।"

१३. ध्वलाटीका / षट्खण्डमम / पृ.३/१,१-१,३/पृ.१ (षट्खण्डमम-परिशीलन / पृ.३३७) ।
 १४. ध्वलाटीका में गाथा का उल्लेख इस प्रकार है— "वा य पाणपरिणतो पूण जीवो कम्म

हुए थे ।

का उल्लेख किये जाने से सिद्ध है कि कुन्दकुन्द आठवीं शती ई० से बहुत पहले की उपर्युक्त गाथाओं के प्रमाणरूप में उद्धृत किये जाने तथा प्वाश्लिपाहुड मन्थ आठवीं शती ई० के बीरसेन स्वामी के द्वारा ध्वला और जयध्वला में कुन्दकुन्द

स.सा./८०, ष.ख./पृ.३/पृ.१२ ।

जीवपरिणामहेतु कम्मत्तं पूणत्ता परिणमत्ति ।
 पूणत्तकम्मपरिणमत्तं तहेव जीवो वि परिणमड् ॥ ४

स.सा./२६२, क.पा./पृ.१/पृ.४४ ।

अञ्जवसिदेण बंधो सत्ते मारुड मा व मारुड ।
 एसा बंधममासो जीवाणं विच्छयणयस्स ॥

पृ.१५ ।

स.सा./२६५, क.पा./पृ.१/

वा य वस्यदो हु बंधो बंधो अञ्जयजोणो ॥
 वस्यं पडुव्व तं पूण अञ्जवसाणं ति णाडु ववहोती ।

प.सा./ता.व.पाठ ३/१७-१,२, क.पा./पृ.१४-१५ ।

मुच्छा परिणहो विव अञ्जयपमाणदो णोदो ॥
 वा हि तस्स तण्णमिती बंधो सुद्धो य देसिदो समये ।

आबाधज्ज कुत्तिगो मरुज तं जोगमासेज्ज ॥
 उव्वालदस्मि पाए इरियामिदस्स णिणमड्ढो ।

प.सा.३/१७, ष.ख./पृ.१४/पृ.१०, क.पा./पृ.१/पृ.१४ ।

पयदस्स पाश्लि बंधो हिमसेनेण समिदस्स ॥
 मरुड वा विण्डु वा जीवो अयदाचारस्स विच्छेदा हिमा ।

में उद्धृत की गयी है—

इनके आतिरिक्त कुन्दकुन्द की निम्नलिखित गाथाएँ भी ध्वला एवं जयध्वला

उद्धृत किया है।" १३

ने कुन्दकुन्द-विरचित भावार्थान्त के 'एगो मे सम्मदो अणा' आदि गाथा (५९) को

अ०१०/पृ०१

२८२ / जैनपरम्परा और यापनीयसंघ / खण्ड २

१५. जैनशास्त्रिकशास्त्र मूलाः : 'जैन साहित्य और इतिहास पर विशद प्रकाश' पृ. ३०२।

उक्त लेख में अकालवर्ष-पूर्ववर्ष-वर्ष-मन्त्री नाम आया है। जैन शिलालेखों के

पूर्वतः कृत्रिम होने के मत का निरसन

काल ईसापूर्वोत्तर प्रथम शताब्दी ही सिद्ध होता है। अतः कृत्रिम-वर्ष-मन्त्री की प्राचीनता से भी कृत्रिम-वर्ष-मन्त्री और पूर्ववर्ष-मन्त्री में प्रथम-द्वितीय शताब्दी ई० में हुए उपासनाओं को कृत्रिम-वर्ष-मन्त्री काल है। अन्य शीलों से कृत्रिम-वर्ष-मन्त्री सिद्ध होता है। पूर्ववर्ष-मन्त्री शिलालेखों किन्तु यह इस ताम्रपत्रलेख के अनुसार कृत्रिम-वर्ष-मन्त्री के आरंभ का अनुमानित

घटित होता है। १५

का समय ताम्रपत्रलेख के समय (४६६ ई०) से दो सौ वर्ष पूर्व अर्थात् २६६ ई० कृत्रिम-वर्ष-मन्त्री के प्रतिष्ठित होने के लिए ५० वर्ष का अन्तराल मानने पर कृत्रिम-वर्ष-मन्त्री के आरंभ का काल १५० वर्ष और

को स्थापित करने में इस मन्दिर की प्रदान किया। अकालवर्ष-पूर्ववर्ष-वर्ष-मन्त्री ने शकसंवत् ३८८ की माघ शुक्ल पञ्चमी, सोमवार को तद्वननगर के श्रीविजय-विनायक के लिए दिया गया बदनोप्ये नामक गौ वृद्ध शिष्य जयगण्डीभट्ट, उनके शिष्य जयगण्डीभट्ट, उनके शिष्य चन्दगण्डीभट्ट, उनके शिष्य अमरगण्डीभट्ट, उनके शिष्य शीलभद्रभट्ट, उनके शिष्य शीलभद्रभट्ट, उनके शिष्य शीलभद्रभट्ट के द्वारा देशीयगण, इसमें कहा गया है कि कोङ्कण-महाधिरोज अविनीत के द्वारा देशीयगण,

ले.क.१५)।

बदनोप्ये नाम अविनीतमहाधिरोज दत्तन पद्वे आरंभम्।" (जैन.सं./मा.व./भा.२/ पञ्चमी अकालवर्ष-पूर्ववर्ष-वर्ष-मन्त्री तद्वननगर श्रीविजयविनायकके असीति-उत्तरस्य त्रयो-स (१) तस्य संवत्सरस्य माघमासं सोमवारं स्थापितक्षेत्रं सूक्त शिष्यस्य जयगण्डीभट्ट-शिष्यस्य गण्डीभट्ट-शिष्यस्य चन्दगण्डीभट्ट-शिष्यस्य अमर-व्य-गण्डीभट्ट-शिष्यस्य अमरगण्डी (अमरगण्डी) भट्ट तस्य शिष्यस्य शीलभद्रभट्ट-शिष्यस्य कोङ्कणमहाधिरोज अविनीतनामधेय दत्तस्य देशीयगण-कोण्डक-व-

उल्लेख है। लेख की संख्या पण्डितों के प्रकाश है—

मकरा के खजाने से प्राप्त ताम्रपत्रलेख में शकसंवत् ३८८ (४६६ ई०) में कृत्रिम-वर्ष-मन्त्री के आचार्य चन्द्रभट्ट-भट्ट के एक विनायक के लिए ग्रामदान का

मकरा-ताम्रपत्रलेख में कृत्रिम-वर्ष-मन्त्री का उल्लेख

१९. वही/भा.२/नीलमंगल-लेख क. १४।
 १८. वही/भाग ३/प्रस्तावना/पृ.५०/पादटिप्पणी।
 १७. वही/भाग ३/प्रस्तावना/पृ.५३।
 १६. वैन शिलालेख संग्रह/मालिकवन्द ग्रन्थमाला/भा.३/प्रस्तावना/पृ.४८। धवला/पृ.६/पृ.१२।

२. अपने राज्य का ग्राम उन्हीं दूसरे राज्य के मंत्री के द्वारा क्यों दिलावाया? अपने ही मंत्री के द्वारा क्यों नहीं दिया ?
 दे सकता था ?

१. यदि राजा अकालवर्ष-पृथ्वीवल्लभ कृष्ण तृतीय (१३७-१६८ ई०) के काल में मर्कट-राजपूत्र लेख में ग्रामदान का वर्तमान भी बाद में जोड़ा गया हो, तो उस राजा के मन्त्री के साथ ५०० वर्ष पूर्व (शक सं० ३८८=४६६ ई०) की घटना क्यों जोड़ी गयी, जिसका उसके समय में घटित होना असंभव है? इसके आतिथिक राजा को-इतिवृत्त अविनीत (४२५ ई०) अपने से ५०० वर्ष बाद होनेवाले अधिष्ठानमन

जाय तो निम्नलिखित प्रश्न उठते हैं—
 वर्तमान नया जोड़ दिया है। यदि ग्रामदान के वर्तमान को भी बाद में जोड़ा गया माना दान किया था, " यह वर्तमान तो पुनर्लिखित राजपूत्रों में पूर्ववत् ही रखा गया है, शेष के श्रिविजय-जिनालय के लिए बटुगुण्ड ग्राम कुन्दकुन्दान्वय के चन्द्रान्दधर का अंशतः कृतितम है। " राजा अविनीत या उसके मंत्री ने शक सं० ३८८ में तळवनगर काया गया है और लेख में कुछ अंश नया जोड़ा गया है। अतः यह राजपूत्रलेख मरा मरा भी ऐसा ही है कि उस राजा के काल में इन राजपूत्रों का पुनर्लेखन

के नाम लिखे गये हैं। " १८
 एवं घटना आदि के साथ दान से सम्बन्धित देशीयगण, कोण्डकुन्दान्वय के आचार्यों को उस राजा के काल में पुनः नये रूप में उत्कीर्ण किया गया है। तथा इन नामों में रखते हुए वे लिखते हैं— " इस सबसे हमें लगता है कि मर्कट के प्राचीन राजपूत्रों तृतीय) के मन्त्री द्वारा बटुगुण्ड नामक गाँव के दान का उल्लेख है। " १९
 राजपूत्र) में चन्द्रान्दधर का श्रिविजय-जिनालय के लिए अकालवर्ष नये (कृष्ण १३७ ई० से १६८ ई० के लगभग बतलाया जाता है। " २०
 --- " लेख नं० १५ (मर्कट १६० ई० के लगभग, तृतीय का मर्कट १७१ ई० से १८४ ई० के लगभग तथा तृतीय का मर्कट १७१ ई० से १७८ ई० है। उन सभी का नाम कृष्ण था। कृष्ण प्रथम का समय मर्कट १७१ ई० से १७८ ई० के इतिहास की ओर ले जाता है। इस वंश में अकालवर्ष-उपाधिधारी तीन नरेश अर्थात् डॉ० गुलाबचन्द्र जी चौधरी का कथन है कि यह नाम " हमें बतलाते हैं कि यह नाम